लिपि प्रकाशन
1, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110 002

शब्द दंश

मुद्राराक्षस

मूल्य : रु० 24.00

© मुद्राराक्षस

प्रथम संस्करण : 1984

प्रकाशक
लिपि प्रकाशन
1, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

मुद्रक : ग्रन्थशिल्पी द्वारा नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-32

SHABDA DANSH (Short Stories) By Mudrarakshas

शब्द-दंश

भीड़ से आवाज आई : मारो ! मार डालो !

लोग उस पर टूट पड़े। उसने अपने फटे कुर्ते की बज्जियां दोनों हाथों से पकड़ीं और अचानक ऐसी आवाज में चीखा जैसे कहीं बहुत ऊंची जगह से उसे धकेल दिया गया हो। भीड़ उसकी चीख से उत्तेजित होकर उस पर टूट पड़ी। अब वह जमीन पर गिर गया था। उसके हाथों में इतनी भी ताकत नहीं रही थी कि वह अपने चेहरे को बचाता। दो आदमी उसके सीने पर झुके हुए उसके चेहरे पर घूंसे मार रहे थे। विद्यार्थी जैसा दिखनेवाला युवक उसे मारने का कोई रास्ता नहीं खोज पाया इसलिए एक तरफ से दिखती हुई उसकी काली उंगलियों को अपने जूते से कुचलने लगा। उंगलियां कुचल चुकने के बाद उसने उसकी हथेली भी कुचली। तभी ब्लेड वाले आदमी ने नीचे झुक कर उसके नंगे कूल्हों पर ब्लेड से कई घाव किए।

सहसा सारी भीड़ चौंकी। किसी सायरन की तेज आवाज सुनाई दे रही थी। सायरन ! सायरन !—बिना कुछ भी सोचे देखते-देखते सारी भीड़ में भगदड़ मच गई। लोगों ने समझा कि हवाई हमला हो गया इसलिए वे जल्दी छुपने लगे। सड़क बिल्कुल खाली हो गयी।

सायरन एक पुलिस की गाड़ी का था। तेजी से आकर गाड़ी उसके थरथराते हुए शरीर से थोड़ी दूर पर रुक गई। सिपाही नीचे आए। उन्होंने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। लेकिन कोई नजर नहीं आया। दो-तीन सिपाहियों ने आगे बढ़ कर उसके जख्मी और कांपते हुए शरीर को उठा कर गाड़ी पर लादा। वे खुद भी सवार हो लिए और गाड़ी दुबारा सायरन बजाती हुई चली गई। सड़क पर बुरी तरह खामोशी छा गई।

कांटेदार तारों के फाटक पर सन्तरी अभी ज्यों का त्यों ऊंघ रहा था। सड़क पर सहसा एक काला साया दिखा। दो क्षण बाद वह नीचे उतरा। वह सिर्फ एक कौआ था। फटे कुर्ते के चीथड़े के पास एक मैली-सी फांक डबल रोटी पड़ी थी जिसे खोद-खोद कर वह खाने लगा !

□

शब्द-दंश

बाजी का चेहरा लेमनजूस की गोली की तरह ही सख्त लेकिन मीठा है। वह बेचना जानता है, यह दूसरी बात है कि बुढ़ापे की वजह से बिक्री का काम अम्मा ने ले रखा है। लेकिन बाजी के चेहरे की मिठास हर गाहक को मुतस्सिर करती है। शायद मजबूर भी।

बाजी काउण्टर पर रखे शीशे के बर्तनों के पीछे आरामकुर्सी पर यूं बैठता है कि महज उसके सिर के सफेद बाल दिखायी देते हैं, पर जब वह रीढ़ सीधी करता है तो आंखें भी दीखती हैं। अम्मा एक लम्बे-चौड़े मदरासी नाम का संक्षेप है। पूरा नाम बाजी को कभी याद नहीं रहा। अम्मा को शिकायत है (मन-ही-मन !) कि आजकल सेंट रद्दी बनने लगे हैं इसीलिए अम्मा के शरीर से अकसर तीन तरह की गन्ध आती है।

दोपहर को अम्मा दूकान पर आती है तो रातरानी जैसी महक सारी दूकान में भर जाती है। तीन-चार घण्टे बाद वह महक उड़ जाती है और कोई टिंक्चर आयोडीन जैसी गन्ध उसके शरीर से उठती है। रात सात-आठ तक वह टिंक्चर की गन्ध भी गायब हो जाती है और सिर्फ प्याज की बासी-सी गन्ध बाकी रह जाती है।

एक चौथी गन्ध भी आती है अकसर। यह सिर्फ अम्मा को ही महसूस होती है। पी हुई सिगरेट की तम्बाकू को खोलकर सूंघने पर जैसी गन्ध आती है वैसी !

बाजी सिर्फ लेमनजूस बेचता है। शीशे के बर्तनों में खुले हुए, बड़े-बड़े टिनों में बन्द, खूबसूरत-रंगीन डिब्बों में पैक किये हुए, मीठे, चिकने, सख्त लेमनजूस।

कनाट प्लेस से हटकर, दायीं तरफ, पश्चिम को जो अंधेरा-सा रास्ता जाता है, उसी पर कुछ फल वालों के बीच उसकी छोटी-सी, दराज जैसी दूकान है।

अकसर बाजी की दूकान पर कुछ अजीब किस्म के लोग लेमनजूस खरीदते देखे गये हैं। एक बार एक ज़ईफ़ से खादीधारी आदमी ने पूरे एक पाउण्ड लेमनजूस खरीदे और पैकेट वहीं छोड़ दिया। एक नौजवान विद्यार्थी एक ही शाम तेइसवीं बार दो टाफियां खरीद कर गुड ईवनिंग कहता हुआ नीचे उतरा। यह दूसरी बात है कि इतनी कसरत के बाद अन्तिम प्रयास तक रात हो चुकी थी। एक अधेड़ आर्टिस्ट करीब आधा घण्टा दूकान में यह तय करता रहा कि उसे टाफी लेनी चाहिए या आरेंज और आखिरकार जब वह बाहर आया तो उसके हाथ में सिर्फ एक लालीपाप की बाकी बची हुई दुम थी।

बाप को छोड़कर अम्मा का और कोई नहीं है। अम्मा के बाप का नाम भी बाजी को याद नहीं।

वह बाजी की दूकान पर आता है। हर हफ्ते। शनिवार को! अम्मा से कुछ रुपये ले जाता है। वह शराब नहीं पीता, सिगरेट भी नहीं। बिलियर्ड भी नहीं खेलता, ताश भी नहीं—सिर्फ पत्रिकाएं खरीदता है। पुरानी।

कार्टून-कथाओं वाली मैगजीनों से लेकर जासूसी और नंगी फोटो वाली स्वास्थ्य की पत्रिकाओं तक, ढेर-की-ढेर पत्रिकाएं वह खरीदता रहता है। अम्मा जब तक मैगजीन हाथ से छीनकर ड्राअर में न ठूंस दे, वह उन्हें घूरता रहता है और इसके बाद वह दीवार घूरता रहता है।

बाजी की दूकान पर वह आता है तो सिवा अभिवादन में सिर को थोड़ी-सी जुम्बिश देने के, बोलता कुछ भी नहीं। करीब एक घण्टा बैठे-बैठे बाजी के कॉलर को घूरता रहता है और इसके बाद पैसे लेकर चुपचाप चला जाता है।

अम्मा की मां अगर थी तो कब मरी, न अम्मा को याद है न उसके बाप को। शायद उसके वजूद की सिद्धि लायक सुबूत भी दोनों में से किसी को याद नहीं।

अम्मा, अम्मा कब हो गयी यह भी नहीं मालूम। अम्मा का अनुमान

है कि एक बार गलती से जब उसका बाप मैगजीन की तसवीरों के बजाय अम्मा को घूरने लगा तभी से अम्मा, अम्मा हो गयी। लेकिन उसने अम्मा को सिर्फ एक बार घूरा, बाद में एक अरसे से अम्मा ही उसे घूरती आ रही है।

अम्मा के बारे में अफवाहें नहीं हैं। अम्मा का खयाल है कि एक लेमन-जूस की गोली घण्टों किसी की जुबान बन्द रख सकती है।

क्या अम्मा के ये खामोश खयाल कुछ बोलते हैं? किसी अनुगूंजे में? अथवा किसी प्रतिक्रिया में? शायद!

अम्मा का बाप किसी जमाने में कैलेण्डर बेचा करता था। विक्रेताओं का एक अपना वंश बन जाता है, वंश ही क्यों एक तहजीब! जब दूकान खत्म हो गयी तो अम्मा का बाप हर चीज को घूरता रह गया। एक युग हो गया उसे घूरते, गोया वह चीजों की कीमत याद कर रहा हो। लेकिन वह खुद ऊबे, इससे पहले उसके आस-पास की चीजें उससे ऊब उठीं। दूकान का खाली खोखा बिक गया, अम्मा बाजी की दूकान पर आ गयी।

बाजी अम्मा के आने तक यह नहीं सोच पा रहा था कि लोगों ने लेमनजूस खाना क्यों बन्द कर दिया। अम्मा आयी तो उसने बखुशी उसे रख लिया क्योंकि उसके दूकान में घुसते ही चार-पांच नौजवान लेमनजूस के स्वाद के लिए बेचैन हो उठे।

इस समूचे अध्याय का आदिकाल खासा गुमशुदा है। अम्मा को भी नहीं याद और बाजी को भी नहीं याद कि सबसे पहले किसी ग्राहक ने सौदा कैसे किया होगा! अम्मा का अनुमान है कि चश्मे के बावजूद बाजी को कम दिखायी देता है। इसीलिए किसी गलतफहमी में वह एक पाउण्ड लेमन-जूस के पैकेट के बजाय सौ पाउण्ड की अम्मा का पैकेट गाहक को थमा गया होगा। (मासूम रैशनलाइजेशन—नहीं?)

अम्मा इस बात पर हैरत करती है कि बाप की कैलेण्डरों की दूकान उठने के बाद से अब तक कितने कम लफ्जों का इस्तेमाल हुआ।

बाप बिलकुल खामोश रहता है। बाजी अकसर उंगलियों के इशारों से

काम लेता है और अम्मा अकसर हफ्तों सीत्कार के अलावा और किसी भी ध्वनि या शब्द की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती।

अम्मा ध्वनि-भीरु है, शब्दाक्रान्त !

जहां शब्द नहीं होते वहां स्थिरता होती है, शान्ति होती है, सब कुछ सहज होता है। शब्द होते हैं तो संक्रान्ति पैदा होती है—क्राइसिस आती है।

अम्मा इसे प्रमाणित कर सकती है। वह भीड़भरी सड़कों से गुजरती है, चहल-पहल भरे कनाट प्लेस पर नजर डालती है तो उसे दहशत होती है।

हर शख्स भाग रहा है, लपक रहा है। हर सवारी तेजी से झपट रही है। हर चीज चल रही है। संक्रान्ति—क्राइसिस—शायद जीने की। क्योंकि शब्द बहुत हैं। कितना कुछ बोला जा रहा है ! कितना शोर !

और एक दिन अम्मा का बाप भी बोल पड़ा। देर तक चौंककर अम्मा आसपास देखती रही—दीवारों को, मेज-कुरसियों को, दरवाजे के मैले परदे को, बरतनों को। आखिर क्या चीज बोली ? बाप की तरफ शुबहा उसे फिर भी नहीं हुआ।

लेकिन वह बोला। उसने कहा कि वह भी लेमनजूस की दुकान खोलना चाहता है।

पहवा ने उस दिन दोनों के साथ कॉफी पी थी। डाइनिंग के नाम पर चूंकि जीने को जाने वाले दरवाजे का बरामदा भर ही था इसलिए अम्मा के लिए यह कोई अस्वाभाविक बात न थी कि वह पहवा को जीने तक पहुंचाने चली जाये। बन्द दरवाजा खोलना और दुबारा बन्द करना भी तो होता था।

अजीब बात है कि पहवा भी बहुत कम बोलता सुना गया था—कम-से-कम इस घर में।

वह मकान की निचली मंजिल में बसे मकान-मालिक का नौजवान लड़का था और सिर्फ इसीलिए अभी तक कालेज में पढ़ रहा था कि कोई

दूसरा काम न करना पड़े। अकसर वह अम्मा के बाप से पत्रिकाएं उधार ले जाता था। कभी-कभी अम्मा के बरामदे में ही कुरसी पर बैठा पढ़ता रह जाता था और संयोग से अम्मा भी आ जाती थी।

पहवा जाने लगा तो कॉफी की प्याली सरका कर अम्मा उसे जीने तक छोड़ने गयी। दरवाजे पर पहवा घूमा। एक बार उसने अम्मा के बाप को देखा जो मेज का गन्दा पत्थर घूरे जा रहा था और फिर जेब से एक-एक रुपये के तीन-चार नोट निकाले। इत्मीनान से उनकी पुड़िया बनायी। अम्मा के बेतरह उभरे ब्लाउज के ऊपरी हिस्से को शालीनता के साथ उसने दो उंगलियों से खींचा और दूसरे हाथ की उंगलियों से नोटों की पुड़िया इस तरह अन्दर सरकायी जैसे किसी बीमार तोते का चारा रख रहा हो। दो-तीन बार टटोलकर जब उसने इत्मीनान कर लिया कि नोट ठीक जगह पहुंच गये तो उसने ब्लाउज छोड़ दिया। बस, इसके अलावा कोई जिज्ञासा नहीं, कोई लोलुपता नहीं, शायद जल्दबाजी भी नहीं।

लेकिन अम्मा जब घूमी तो उसने पाया कि उसका बाप मेज का पत्थर नहीं, दरवाजे का हिलता हुआ परदा घूरे जा रहा है।

इसके बाद जब अम्मा बिस्तर बिछाने की तैयारी कर रही थी, उसका बाप बोल पड़ा।

असम्भव ! जहां शब्द है, वहां संक्रान्ति का न होना अकल्पनीय है।

अगले दिन अम्मा के असहाय बाप को सिर्फ उसकी पत्रिकाओं की फोहश तसवीरें घूर रही थीं और अम्मा···

जब शब्द जरूरी हैं, जब ध्वनियां अनिवार्य हैं तो क्यों अम्मा दूसरों के लेमनजूस बेचती रहे ? क्यों न वह खुद लेमनजूस का एक कारखाना खोल ले ? अम्मा चली गयी। कहां गयी, कोई नहीं जानता।

इशारे से कोई कितनी झल्लाहट जाहिर कर लेगा ? इसीलिए अम्मा की अनुपस्थिति पर बाजी बड़बड़ाता रहा। (फिर संक्रान्ति ?) आखिरकार जब उसे कुछ न सूझा तो वह बीमार हो गया। पहले हलका-हलका बुखार आया, फिर बहुत तेज हो गया।

मुसीबत यह कि घर में बाजी निपट अकेला। आखिर पड़ोसी ने मदद की। एक तार दिया गया बाजी की लड़की और दामाद के नाम। जवाबी तार। जवाब तुरन्त आया। दामाद को छुट्टी नहीं मिली इसलिए वह आने में असमर्थ था पर बेटी आ रही थी। बाजी खासे बुखार में भी आंखें बन्द किये हुए ही तार सुनकर मुसकराया।

तार शाम को मिला था। सुबह बाजी की बेटी रिनू आ गयी। टैक्सी वाले ने सामान बाद में उतारा, रिनू भागती हुई आकर बाजी से लिपट गयी। लिपटकर वह रोयी। बाजी सचमुच बहुत दुबला हो गया था। बाजी भी पहली बार रोया। शायद उम्र की कमजोरी हो। बन्द पलकों से कनपटियों तक, दोनों ओर, चमकीली गर्म धारियां आंसुओं की खिंच गयीं। देर तक खिंची रहीं। तब रिनू ने अपनी पतली-लम्बी उंगलियों से उन्हें पोंछ दिया। बाजी ने थोड़ी-सी आंख खोलकर उसे देखा और चुपचाप आंखें बन्द करके सो गया।

कई दिन लगे उसे ठीक होने में। रिनू पागल की तरह जुटी रही। इस बीच न उसने अपने खाने का ध्यान रखा, न पहनने का। कहते हैं, अपना कोई होता है तो पराये भी साथ आ खड़े होते हैं। जिसने तार दिया था (यह अलग बात है कि वह खुद तारबाबू था), वह भी सुबह-शाम देखने आने लगा। रिनू बाजी की तीमारदारी में बदहवास रहती। एक दिन वह नहा रही थी। बाजी अनायास कराहने लगा। शायद तारबाबू ने तकिया ठीक करने की कोशिश की इसलिए।

कराह की भनक पड़ते ही गुस्लखाने के दरवाजे भड़ाक से खोलकर, सिर्फ सीने पर एक मैला-सा तौलिया दबाये रिनू हिरनी की तरह भागती आयी। उसने बाजी के सिर को किसी मुरझाये गुलदस्ते की तरह बाजुओं में ले लिया।

हैरत है कि इसके बाद तारबाबू के शब्द समाप्त हो गये।

रिनू झपटकर दुबारा गुस्लखाने में बन्द हो गयी पर तारबाबू गुस्लखाने का दरवाजा घूरता रहा। कोई शब्द नहीं, कोई चाप नहीं, बस ऐसा लगता था जैसे कहीं दूर किसी ब्वायलर से निकलती स्टीम सहसा बन्द हो गयी हो।

इसके बाद बाजी की कराह पर नहीं, तारबाबू की आहट पर इसी घटना की पुनरावृत्ति होने लगी। रिनू को इस तरह बार-बार तारबाबू की गोद में देखकर बाजी के स्नायु इस तरह क्रियाशील होने लगे जैसे उसके किसी निर्जीव अंग पर बिजली का हलका-हलका धक्का दिया जा रहा हो।

बाजी झटपट अच्छा होकर दुकान पर नजर आया—शीशे के बरतनों के पीछे, एक अखबार में आंख गड़ाये, आरामकुरसी पर।

आहट पाकर उसने आंखें उठायीं। चश्मा उतारकर हाथ में ले लिया ताकि सूरत साफ नजर आ सके। अभिवादन के उत्तर में बाजी का मुसकराता चेहरा नीचे की ओर हिला।

—आपकी तबीयत कैसी है? आने वाले ने पूछा।

बाजी ने 'मौज है' की मुद्रा में बदन हिलाया और दोनों हाथ आसमान की तरफ उठाकर 'ईश्वर की दया' की ओर इशारा किया।

—वो तो सही है पर मैंने सुना था कि आपकी तबीयत कुछ ज्यादा खराब थी।

बाजी ने मुसकराकर मजबूरी में भी सन्तुष्ट रहने की स्थिति स्वीकारने का भाव प्रकट किया।

—वो रिनू कहां है?

बाजी ने चश्मा पहन लिया। अखबार किनारे रख दिया। कुरसी से उठा। ड्राअर से बादामी कागज का बड़ा-सा लिफाफा निकाला और उसमें लेमनजूस भरने लगा। बोला—दो पाउण्ड!

—जी?

—दो पाउण्ड से कम नहीं होगा! बाजी ने हाथ रोककर कहा—पन्द्रह रुपए।

—लेकिन मुझे ये नहीं लेना।

—ठीक है लेकिन इससे कम नहीं होगा।

आगन्तुक बाजी के चेहरे को गौर से देखने लगा। बाजी धुंधली-सी मुसकराहट लिए आगन्तुक की तरफ देखता रहा।

—आपने मुझे पहचाना नहीं?

—नहीं···नहीं, तुमने गलत समझा। मेरी याददाश्त इतनी कमजोर

नहीं हुई। लेकिन नया हो या रेग्युलर आने वाला हो, इस बार दो पाउण्ड से कम नहीं।

—आप···आपको हुआ क्या है ? रिनू कहां है ?

बाजी फिर थैला भरने लगा—यह ले लो, अभी इन्तजाम किये देता हूं।

—आप क्या कह रहे हैं ? शायद आप ज्यादा बीमार रहे हैं। मुझे पहचानिये···मैं···मैं आपका दामाद हूं···आपका दामाद।

बाजी पैने कैट रख दिया। चश्मा उतार लिया। उसके चेहरे का रंग बदल गया। मुसकराहट गायब हो गयी। सेल्यूलायड की तरह खुश्क, चिकनी आवाज में बोला—गाली मत दो ! तमीज से बात करो !

अचानक अन्दर का दरवाजा खुला। एक अधेड़-सा आदमी 'गुड ईवनिंग' कहकर, अपना हैट उठाकर, खामोशी से बाहर उतर गया।

बाजी ने कहा—दो पाउण्ड के पैसे इधर रख दो और अन्दर चले जाओ। लेकिन याद रखो, यह गाली देने से अच्छा होगा, तुम लौटकर 'गुड ईवनिंग' कहो और बाहर चले जाओ।

लेकिन 'गुड ईवनिंग' का मौका नहीं आया। खुलकर बन्द हुए दरवाजे से रिनू ने झलक पा ली थी। दो पल बाद वह कैद से छूटी हुई चिड़िया की तरह फड़फड़ाकर बाहर आयी और अपने खाविन्द से लिपट गयी। जोर-जोर से हिचकियां लेते हुए उसने कहा—बाजी राक्षस है ! उसने मजबूर कर दिया ! उसने मजबूर कर दिया !"

अब रिनू का खाविन्द खामोश हो गया। रोती हुई रिनू को उसने आहिस्ता से अलग किया और बुत की तरह खड़े बाजी की ओर किसी पेशेवर घूंसेबाज की तरह कलाइयां मरोड़ता आगे बढ़ा। उसने घूंसे नहीं लगाये। बुत की तरह खड़े बाजी की आंखों में आंखें डाले वह इस तरह खड़ा रहा गोया बाजी की पहल का इन्तजार कर रहा हो।

आखिरकार जब बाजी ने अपनी पलकें तक नहीं हिलायीं तो उसने दोनों पंजों से बाजी का सर थाम लिया। बाजी को किसी फूस के बण्डल की तरह हिलाया और कुरसी की तरफ धकेल दिया। बाजी कुरसी पर इत्मीनान के साथ जा गिरा।

इसके बाद रिनू का खाविन्द रिनू की ओर घूमा। उसके आगे बढ़ते ही रिनू भयभीत होकर पीछे हटी। लेकिन उसके खाविन्द ने मौका नहीं दिया। उसने झपटकर रिनू को कन्धों से पकड़ लिया। पकड़ने के बाद उसने रिनू का एक चुम्बन लिया और फिर धीरे-धीरे दोनों दुकान की सीढ़ियां उतर गये।

बाजी बैठा-बैठा सामने की दीवार घूरता रहा। थोड़ी देर बाद किसी एक और बुत की तरह सीढ़ियां चढ़कर अन्दर आया अम्मा का बाप। सिर को हमेशा की तरह हलकी-सी जुम्बिश देकर वह बाजी के सामने की कुरसी पर बैठ गया।

दोनों बुतों की तरह बहुत देर तक एक दूसरे को घूरते रहे—निरभि-प्राय। तब अम्मा के बाप ने अपनी बायीं हथेली बाजी के आगे फैला दी।

बाजी को याद आया, आज शनिवार था !